विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK - 64

वर्ष ६ • बम्बई : बुद्धवर्ष २५२० • चैत्र पूर्णिमा [शक] • ४-४-१९७७ • अंक १०

विपश्यना की अतीत यात्रा

—मुनि नथमल

अणुव्रतव न्यास द्वारा संचालित अध्यात्म-साधना केन्द्र में विपश्यना शिविर का आयोजन। श्री सत्यनारायणजी गोयनका की उपस्थिति। उसमें कुछ गृहस्थ साधक थे। अधिकांश साधु-साध्वियों का प्रवेश था। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। साधना पहले से चल रही थी। ध्यान का क्रम भी चालू था। पर जिज्ञासा थी विपश्यना पद्धति के विषय में।

जैन सूत्रों में पहला सूत्र है 'आयारो' (आचारांग)। उसे पढने वाला 'लोगविपस्सी' शब्द से अपरिचित नहीं हो सकता। 'लोक' का अर्थ है—शरीर और 'विपस्सी' का अर्थ है—गहरे में उतर कर उसे देखने वाला। ध्यान का अभ्यासी 'शरीर-विपश्यी' होता है। मैं भी इस अर्थ से अपरिचित नहीं था।

आचारांग तथा अन्य जैन साहित्य में विपश्यना के तत्व भरे पडे हैं, पर उसकी व्याख्या विस्मृत हो चुकी, यह कहने में कोई संकोच का अनुभव नहीं होता। कितनी शताब्दियों से जैन साधक विपश्यना की पद्धति से अपरिचित है, यह अनुसधेय है। किन्तु यह असंदिग्ध है कि विपश्यना ध्यान की परम्परा उनमें प्रचलित नहीं है। मैं शिविर में गया। केवल अभ्यास के लिए ही मैं नहीं गया तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि भी मेरे सामने थी। जैन परम्परा में लुप्त पद्धति को पकड़ने का ध्येय भी मेरे सामने था। एक ही श्रमण-परम्परा की दो धाराओं—जैन और बौद्ध—में ध्यान की पद्धति समान न हो, उसमें आश्चर्य हो सकता है। यदि वह समान हो तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। बौद्ध परम्परा में विपश्यना ध्यान की पद्धति प्रचलित है। जैन परम्परा में वह पद्धति प्रचलित नहीं है किन्तु उसका आधार और उसके मौलिक तथ्य विद्यमान हैं। उनके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि किसी समय यह पद्धति जैन परम्परा में प्रचलित थी। भगवान महावीर इस पद्धति से ध्यान करते थे, यह बहुत प्रामाणिक तथ्य है।

गोयनकाजी ने शिविरार्थियों को आनापानसती का अभ्यास शुरू कराया। मुझे जैन परम्परा में प्रचलित नासाग्रदृष्टि के ध्यान की स्मृति हो आयी। गोयनकाजी बता रहे थे कि मन को ऊपर के होठ पर केंद्रित करो। हम लोग नासाग्र पर मन को केन्द्रित करने में अभ्यस्त थे। वे बर्मी साधना से परिचित हैं, इसलिए ऊपर के होठ पर मन को केंद्रित करने का निर्देश उचित है। चिपटी नाक वालों के लिए होठ के ऊपरी भाग पर मन को केंद्रित करना अधिक उपयुक्त है। भारतीय मनुष्यों की नाक लम्बी होती है इसलिए उनका नासाग्र होठ से अधिक संवेदनशील होता है। गोयन्काजी के निर्देशानुसार ऊपर के होठ पर संवेदनाओं को पकडते-पकडते मैं अनायास ही नासाग्र पर पहूँच जाता और वहाँ संवेदनाओं को पकडता तथा श्वास के स्पर्श का अनुभव करता।

मैंने अनुभव किया कि कायोत्सर्ग या शारीरिक शिथिलीकरण के साथ आनापानसती का योग बहुत महत्वपूर्ण है। प्राचीनकाल में कायोत्सर्ग श्वासोच्छवास के साथ किया जाता था। वर्तमान में वह पद्धति छूट गई। प्राचीन ग्रंथों में श्वासोच्छवास के साथ कायोत्सर्ग करने का विधान देखा और आनापानसती के प्रयोग से उस विधान को समर्थन मिल गया। बौद्ध परम्परा में जो आनापानसती की साधना है वही जैन परम्परा में कायोत्सर्ग की साधना है।

धम्म वाणी

अञ्ञाय लोकं परमत्थदस्सिं,
ओघ समुद्दं अतितरिय तादिं।
तं छिन्नगन्थं असितं अनासवं,
तं वा' पि धीरा मुनिं वेदयन्ति॥

सुत्तनिपात १२।१३.

जो अपनी काया के भीतर, महज चिंतन के स्तर पर नहीं, बल्कि विपश्यना द्वारा अनुभूतियों के स्तर पर नरक, पशु, असुर, मनुज, देव, ब्रह्म आदि विभिन्न लोकों का सही ज्ञान प्राप्त करता हुआ, काया, चित्त, चैतसिक और निर्वाण संबंधी परमार्थ सत्यों का स्वयं साक्षात्कार कर तृष्णा की बाढ़ और अज्ञान के दुःख-समुद्र को लांघकर जीवनमुक्त अवस्था में स्थित, सर्वथा असंग, अनास्रव और छिन्न-ग्रन्थि हो गया हो, समझदार लोग उसे मुनि कहते हैं।

तीसरे दिन विपश्यना का अभ्यास प्रारंभ हुआ। गोयन्काजी ने साधकों को निर्देश दिया—वे स्थिर आसन में बैठ, आंखे मूंद, शरीर के भीतर देखें, भीतर होनेवाले संवेदनों का अनुभव करें, सुखद या दुःखद जो भी संवेदना हो, उन्हें तटस्थभाव से देखें, अप्रमत्त रहें, वर्तमान की सच्चाई का अनुभव करें—इस निर्देश के साथ अभ्यास शुरू हो गया। मन को अंतर्मुखी करने की कुंजी हाथ लग गई। वैसे यह बात अज्ञात नहीं थी। याज्ञवल्क्य, गीता और आचार्य हेमचन्द्र के 'योगशास्त्र' को पढ़ने वाला 'उत्तराधार' प्राणायाम से अपरिचित नहीं है। उस प्राणायाम में सिर से पैर तक और पैर से सिर तक, प्रत्येक अवयव का स्पर्श करते हुए प्राणधारा को प्रवाहित किया जाता है। किन्तु विपश्यना की पद्धति यही है। इसकी प्रामाणिक जानकारी एक सुपरिपक्व अभ्यासी साधक के द्वारा मुझे पहली बार मिली। एकाग्रता का अभ्यास मुझे पहले से था। इसलिए संवेदनाओं को पकड़ने में विशेष कठिनाई नहीं हुई। प्रथम अभ्यास में ही कुछ स्पन्दन, कुछ संवेदनाएँ और यंत्र-तंत्र शारीरिक अवरोध अनुभव में आए। मैंने सोचा—मन की सूक्ष्मता होने पर और अधिक सूक्ष्म संवेदनाओं को पकड़ा जा सकता है। अंतर्मुखी होने, घटना के प्रति तटस्थ रहने का एक निश्चित दृष्टीकोण निर्मित हो गया। कोई बहुत बड़ा शारिरीक या मानसिक लाभ हुआ हो, यह मैं नहीं कह सकता। यह कह सकता हूँ कि मुझे धारणात्मक लाभ अवश्य हुआ। मेरी धारणा निश्चित बन गई कि यह पद्धति वीतरागता के अभ्यास की पद्धति है। इसमें चमत्कार, प्रलोभन या मिथ्या कल्पना के लिए कोई अवकाश नहीं है। यह यथार्थवादी दृष्टीकोण से निष्पन्न यथार्थवादी साधना है।

मैं अभ्यासकाल में अभ्यास करता गया। उसके बाद अवकाश के क्षणों में विपश्यना की आचारांग के सूत्रों से तुलना करता गया। मुझे लगा आचारांग सूत्र में विपश्यना की पूर्ण पद्धति प्रतिपादित है, किन्तु परम्परा की विस्मृति होने के कारण उसकी स्पष्ट पकड़ नहीं है।

विपश्यना का मूल तत्त्व है—अप्रमाद और शरीर-दर्शन। यथाथ को जानना और घटना के प्रति तटस्थ रहना। आचारांग का एक सूत्र है—पुरुष अप्रमाद की साधना में उत्थित होकर प्रमाद न करे (५/२३) अप्रमाद की साधनाका सूत्र है—शरीर की विपश्यना। 'इस औदारिक (स्थूल) शरीर का यह वर्तमान क्षण है। इस प्रकार जो वर्तमान क्षण का अन्वेषण करता है, वह सदा अप्रमत्त होता है (५/२१)।

सामान्यतः शरीर की ओर प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा को अन्तर की ओर प्रवाहित करने का प्रथम साधन है—स्थूल शरीर। इस स्थूल शरीर के भीतर तैजस और कर्म—ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर है आत्मा। स्थूल शरीर की क्रियाओं और संवेदनाओं को देखने का अभ्यास करने वाला क्रमशः तैजस और कर्म शरीर को देखने लग जाता है। शरीर-दर्शन का दृढ़ अभ्यास और मन सुशिक्षित होने पर शरीर में प्रवाहित होने वाली चैतन्य की धारा का साक्षात्कार होने लग जाता है। जैसे-जैसे साधक स्थूल दर्शन से सूक्ष्म दर्शन की ओर आगे बढ़ता है। वैसे-वैसे उसका अप्रमाद बढ़ता जाता है।

साधक चक्षु को संयत कर लोक (शरीर) को देखता है। वह लोक के अधोभाग को देखता है, ऊर्ध्वभाग को देखता है और तिरछे भाग को देखता है (२/१२५)। जो पुरुष शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श को भलीभांति जान लेता है, उनमें राग-द्वेष नहीं करता—तटस्थ रहता है, वह आत्मवान, ज्ञानवान, वेदवान, धर्मवान और ब्रह्मवान होता है (३/४)।

विपश्यना की बौद्ध परम्परा में धर्मवान शब्द ही उपयुक्त है। जैनों की विपश्यना पद्धति में आत्मवान शब्द भी संगत है। जो पुरुष अपनी प्रज्ञा से लोक को जानता है वह मुनि (ज्ञानी) कहलाता है। वह धर्मविद और ऋजु होता है (३/५)।

जैसे अग्नि जीर्ण काष्ठ को शीघ्र जला देती है, वैसे ही समाहित आत्मा वाला अनासक्त पुरुष कर्म-शरीर को प्रकंपित, कृश और जीर्ण कर देता है (४/३३)। आत्मा की संप्रेक्षा करने वाला अनासक्त हो जाता है (४/३२)।

आचारांग सूत्र में विपश्यी और संप्रेक्षा—ये दोनों शब्द मिलते हैं। विपश्यना ध्यान की साधना के बाद इन दोनों शब्दों की गहराई में जाने और उनका हार्द समझने का अवसर मिला। एक ही श्रमण परम्परा की दो धाराओं में विपश्यना या प्रेक्षा का प्रचलन होना आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य की बात यही है कि बौद्ध धारा ने उसे अब तक अविच्छिन्न रख लिया और जैन धारा उसे अविच्छिन्न नहीं रख सकी। उस विसमृत तत्त्व को पुनः स्मृतिपटल पर उतारने में विपश्यना शिविर की साधना निमित्त बनी। इसे मैं सबसे बड़ा लाभ मानता हूँ।

विपश्यी कैदियों के उद्‌गार

.....गुरुदेव ने पांच शील दिलाए। उनका मैंने सही ढंग से पालन किया उसके बाद आना-पान की क्रिया तीन दिन तक चलती रही। बड़ा अजीब सा लगा। परन्तु जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया, विपश्यना की क्रिया बताई गई। अपने तो बाहर-ही-बाहर देखा था। अब अपने अन्दर देखा तो नाना प्रकार की अनुभुतियां हुईं। उसे देखते देखते एकदम बदल गया और ऐसी शांति मिली कि दिल के सभी द्‌वेष निकलते हुए महसूस हुए। जीवन जीने का सही रास्ता प्राप्त हो गया। रास्ता सरल और सीधा है। थोड़ा मन एकाग्र करके अन्दर देखा जाय तो मालूम हो जाता है कि इन्सान आप ही अपनी बुराई करता है, दूसरा नहीं। विपश्यना से सभी राग-द्‌वेष खत्म हो जाते हैं। सच्चे धर्म पर चलने का यही रास्ता है। मुझे मेरी जिन्दगी में नई जिन्दगी मिल चुकी है। इसी में औरों का भी मंगल, अपना भी मंगल। औरों का भी भला, अपना भी भला। औरों का भी कल्याण, अपना भी कल्याण। मेरे लिए ऐसी धर्म-गंगा में गोता लगा है कि मेरे पूर्व जन्म के अनेक संस्कार खत्म हो चुके हैं और जब तक जिन्दा रहूँगा तब तक शेष खत्म हो जायेंगे। मैं अपने परिवार से, दोस्तों से, पडोसियों से, सभी से यही रास्ता जीने को कहूँगा। यही रास्ता है जिससे नया जीवन मिल जाता है। इस कारागृह में आने से मुझे यह नया जीवन प्राप्त हुआ है।

गुलाबसिंह, अपराध-कत्ल, सजा-बीस वर्ष।

क्रमशः....

विपश्यना से अपने शरीर के अन्दर की सभी संवेदनाओं को देखा तो जाना कि हम अपने शरीर में नए संस्कार बनाते रहते हैं और उनकी पुष्टि करते हैं। जब ये संस्कार हमारे शरीर में अपना घर कर लेते हैं तो हमें बेचैन करते हैं। तब हम दूसरों को दोष देते हैं। अब इस विपश्यना से यह अनुभव हो गया है कि अपने को दुःख देने व जलाने का काम हम स्वयं करते हैं। विपश्यना से हमें यह मालूम हुआ कि अपनी सत्यता को अन्दर ही देखें। किसी को दोष न दें। विपश्यना बहुत ही लाभदायक है। यह शिविर हमें बहुत ही अच्छा लगा। शिविर में बैठे हुए मुझे ऐसा महसूस होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ। विपश्यना पूरी होने के बाद शरीर में से मंगल मैत्री की तरंगें निकलने लगीं। उनमें प्यार ही प्यार था। मैं चाहता हूँ कि सदा शिविर में रहूं और सच्चा धर्मी बनकर लोगों की सेवा करूं।

तेजसिंह, अपराध–कत्ल, सजा–आजीवन।

हमारे मनमें दुश्मनों को नष्ट करने के लिए जो विचार उत्पन्न हुए थे वह गुरुजी के प्रवचनों से हमारे मन से जाते रहे। और अब हमारे मन में उनके प्रति (मंगल भाव हैं) दुश्मनों का भी भला हो, मंगल हो। ..... यह हमारे पूर्व जन्म के पुण्य होंगे जो आज हमें यह शुभ अवसर—धर्म के प्रति जागरूकता का आभास मिला।..... इसी तरह हमारे भाई जो दूसरी जगह जेलों में यातना पा रहे हैं उनका भी विपश्यना द्वारा कल्याण हो।

विष्णुदत्त शर्मा, अभियोग–कत्ल, सजा–आजीवन।

यह साधना अन्तःकरण के अंधकार को झकझोर कर एक प्रकार की अनोखी अनुभूति पैदा कर देती है। आंतरिक विकारों को दूर कर मानवमात्र में प्यार, करुणा व श्रद्धा की भावना, जो उसके मन में छुपे रूप से विद्यमान रहती है, उभारकर सामने ला देती है—जिसे निर्वाण या मोक्ष कहा गया है। इस साधना से मनुष्य के मन में छायी हुई गंदगी जो उसके अहंकार के कारण भीतर ही भीतर उसे जकड़े रहती है उससे छुटकारा दिलाने में बहुत बड़ी सहायता प्रदान करती है।.....विपश्यना का उद्देश्य अपने को भलीभांति समझना है। प्रत्येक अवस्था में निरासक्त हुए समभाव बनाए रखना और जीवन के तेज में अहर्निश विपश्यना को जीवन में उतारना ही जीवन की सच्ची सार्थकता है। यह विपश्यना अपने आप में अप्रमेय है। जितनी गहराई से डुबकी लगायी जायेगी, उसका परिणाम भी उतने स्पष्टरूप से सामने आयेगा।

विजयबहादुरसिंह, अपराध–कत्ल, सजा–आजीवन।

जैसे समुद्र में पानी की लहरें उठती, चलती और बढ़ती–घटती हैं, उसी प्रकार सिर से लेकर पांव की अंगुलियों तक चलती हुई नजर आयीं। विश्वास होता है कि ऐसा अभ्यास करने से जन्म–जन्म की पाप–पुंज की गांठे खुलकर दूर हो सकती हैं। ..... हमारी सरकार ने विपश्यना का शिविर लगवाकर हमारे ऊपर अति कृपा की है। ..... बारम्बार धन्यवाद है। आशा करते हैं ऐसे विपश्यना साधना शिविर और लगवाएं जाय, जिसमें हमें भाग लेने को मिले, जिससे हमारे पापों का निवारण हो। ..... सरकार चाहे तो इन्सान को हैवान बना सकती है और कैसा भी मूर्ख क्यों न हो उसको ऐसा ज्ञानवान चतुर इन्सान भी बना सकती है।

संपत, अपराध–कत्ल, सजा–आजीवन।

कैंप लगाने के बारे में सुना तब से ही मुझे बहुत खुशी होने लगी। इतनी खुशी कि मानों कोई रत्न मिलने वाला हो। .... समाप्ति के एक रोज पहले मंगल मैत्री सिखाई गई। उससे आत्मा बहुत खुश हुई। इस कैम्प से मेरा दिल बहुत ही खुश हुआ। आज तक मुझे यह ज्ञान धर्म मालूम नहीं था कि इस दुनिया में अपने परिवार वालों से, दोस्तों से व दुश्मनों से किस तरह के व्यवहार से पेश आना चाहिए। जीवन किस तरह से जीना चाहिए। सो मैंने इस कैम्प में जीना सीखा है। मेरा दिल करता है कि मैं यह धर्म मेरे पूरे परिवार को हासिल करवाऊं व सभी पड़ोसियों को राय दूं कि आप इस जिन्दगी में जीना सीखने के लिए एक बार ऐसे कैम्प में अवश्य जावें।

रूपसिंह, अपराध–हत्या, सजा–आजीवन।

विपश्यना का सबसे बड़ा आकर्षण मुझे यही लगा कि मनुष्य मात्र के लिए सबसे ज्यादा सुलभ (अच्छा) जीवन जीने की राह दिखायी देती है। अब सही जीने का रास्ता मिल गया है। यह दस दिन का कार्यक्रम बहुत ही मंगलकारी रहा। खासकर मेरे जीवन के लिए। क्योंकि अब तक राग–द्वेष की जो बिमारी थी वह अब खत्म हुई तथा किसी भी कार्य को जो अब तक भावावेश में करता रहा, अब सोचने की कला आ गई है तथा एक भावना भी आई और वह कोई सुनी या पढ़ी हुई नहीं। यह सब मैंने अपनी अनुभूतियों से जाना है। अब तक पहले भी काफी शिक्षाप्रद बातें सुनीं थीं लेकिन वह सब सुनी–सुनाई थीं। अब अध्यात्म अपने आप से जान लिया है।....यह विपश्यना ऐसी नहीं जिसे लेकर कोई सांप्रदायिक बातें होवे। यह सबसे अच्छी विधि मानव के विचारों को बदलने के लिए है। इसमें सच्चे धर्म का ही वर्णन आता है जो हर जाति और हर समाज पर लागू होता है।

इससे स्वास्थ्य में भी काफी लाभ हुआ है तथा जो मेरे मानसिक विकार थे, उनसे तो पूर्णतया अवकाश मिल गया है। अब कोई चिंता ही नहीं सताती। ..... यही दिल में आता है कि सच्चे धर्म को हर मानव सीखे और प्रयोग में लाए—यही मेरी हार्दिक मंगल कामना है।

प्रेमशंकर, अपराध–कत्ल, सजा–आजीवन।

पुस्तक सूचना – पूज्य गुरुजी की पुस्तक 'धर्म जीवन जीने की कला' निम्न पतों से प्राप्त की जा सकेगी।

व्यवस्थापक : १) विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरी, इगतपुरी – ४२२४०३ (नासिक – महाराष्ट्र)

२) श्री दयानंदजी अडूकिया, फोन नं. ३१८२४४, ३५०, कालबादेवी रोड, बम्बई ४०० ००२.

विशेष : पुस्तक साधारण बुक पोस्ट से भेजने पर लोगों की शिकायत है कि किसी को मिली और किसी को नहीं। अतः यदि आप पोस्ट से मंगाना चाहें तो कीमत के अतिरिक्त पोर्स्टिंग के लिए रुपए ३/– और भेजें ताकि रजिस्टर्ड पोस्ट से भेज सकें। परन्तु अधिक अच्छा यह होगा कि किसी एक स्थान के सभी साधक / ग्राहक मिलकर एक साथ मंगा लें–इससे अनावश्यक पोस्टेज खर्च तो बचेगा ही कमीशन का लाभ भी प्राप्त होगा।

दयानंद अडूकिया, कोषाध्यक्ष.

आगामी शिविरों की तिथियों में परिवर्तन

पूज्य गुरुजी श्री सत्यनारायणजी गोयन्का द्वारा संचलित 'विपश्यना' साधना शिविरों के आगामी कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं :–

शिविर क्रमांक	१३६	दि. २०–४–७७ से १–५–७७ तक (अंग्रेजी)
,, ,,	१३७	दि. २२–५–७७ से २–६–७७ तक (हिन्दी)
,, ,,	१३८	दि. २–६–७७ से १३–६–७७ तक (हिन्दी)

पुराने साधकों को दस दिन के चलनेवाले शिविरों के मध्यांतर में स्वयं–साधना के लिये अनुमति दी जा सकेगी।

आगामी जुलाई से सितम्बर तक नव गठित "विपश्यना अंतर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र" कुसुम नगर, हैदराबाद में लगातार ५ शिविरों का कार्यक्रम निश्चित है। तारीखें बाद में घोषित की जायेंगी।

व्यवस्थापक
विपश्यना विश्व विद्यापीठ धम्मगिरी, इगतपुरी – ४२२ ४०३
जिला नासिक (महाराष्ट्र) फोन नं. ७६.

नोट :– १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें।
२) अंग्रेजी शिविरों में हिंदी प्रवचन सुनने हेतु हिंदी टेप की सुविधा उपलब्ध रहेगी।
३) विपश्यना विश्व विद्यापीठ के नियम सामान्य शिविरों से कहीं अधिक कड़े हैं। कड़ाई से इनका पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

एक शुभेच्छुक
की मंगल कामनाओं सहित

इण्डो बर्मा रबर इण्डस्ट्रीज
नं. ५ गेनको इण्डस्ट्रियल एस्टेट, मालाड (प.) बम्बई–४०० ०६४.
की मंगल कामनाओं सहित

दोहे धर्म के

सम्यक् ही सम्यक् लगे, ग्रन्थों वाला ज्ञान।
स्वदर्शन बिन हो सका, किसको सम्यक् ज्ञान?
स्वदर्शन के नाम पर, भ्रमित हुआ संसार।
केवल कोरी कल्पना, सिर पर हुई सवार॥
करे दार्शनिक कल्पना, करे वितर्क विचार।
यह सम्यक् दर्शन नहीं, यह न साक्षात्कार॥
कदम कदम पर कल्पना, पग पग बुद्धिविलास।
घिरा अंधेरा मोह का, दिखे न सत्य प्रकाश॥
आख मूंद सोचे सदा, पढ़ी पढ़ाई बात।
होय उजागर कल्पना, सत्य न हो आख्यात॥
मोहक लगे मरीचिका, लगे कल्पना कांत।
सम्यक् दर्शन ज्ञान से, रहे विमुख निर्भ्रांत॥

दूहा धरम रा

सांच धरम पर चालनो, करड़ो घणो कठोर।
थोथी कूड़ी कलपना, राखै मोह विभोर॥
मीठी लागै कलपना, मीठो बुद्धि बिलास।
सांच छूट कर झूठ पर, थिर हूवै बिसवास॥
आगम तिपिटक बेद का, मिथ्या अरथ लगाय।
भोळो भरमे भरम मँ, सांच छूटतो जाय॥
दरसन बाद बिबाद रै, र वै नसै मँ चूर।
दरसन किण बिद होवसी, हुयो न पड़दो दूर॥
अन्तरमन मथतो र वै, अहंकार ममकार।
आत्मभाव छूटै नहीं, कठै सांति रो सार?
मत मतांतरां सूं हुवै, ना विरोध अनुरोध।
जीं जीं छण जो जो हुवै, बीं नै निरख्यां बोध॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : मधु काबरा, सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.
टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय सातपुर, नासिक ४२२ ००७.
विज्ञापन : आधा पृष्ठ ४००/–, चौथाई २००/–, वार्षिक शुल्क रु. ५/, आजीवन शुल्क ५१/–

"विपश्यना"
पो. रजि. नं. एनिएलके/६४.

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट;
२०, शहीद भगतसिंह मार्ग,
फोर्ट, बम्बई – ४०० ०२३.

To